जनसत्ता

न्याय का संकट

देश की अदालतों में जिस तरह से लंबित मुकदमों की तादाद बढ़ती जा रही है, वह गंभीर चिंता का विषय है। निचली अदालतों से लेकर सर्वोच्च अदालत तक में मुकदमों का लगता अंबार न्यायपालिका पर बढ़ते बोझ को बताने के लिए काफी है। संसद में सवाल-जवाब के दौरान सरकार ने बताया है कि देश की निचली और जिला अदालतों में तीन करोड़ चौदह लाख मामले ऐसे हैं जो लंबित पड़े हैं। इनमें चौदह फीसद मामले दस साल या इससे ज्यादा पुराने हैं। चौंकाने वाली बात यह है कि दस साल से ज्यादा पुराने मामले सबसे ज्यादा उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, ओड़िशा, गुजरात में लंबित हैं। लंबित मामलों में ऐसे मुकदमे हैं जिनकी सुनवाई पूरी नहीं हुई है या जिन पर फैसला आना बाकी है। लेकिन सवाल है इनकी सुध ले कौन! विधि और न्याय मंत्रालय ने राष्ट्रीय न्यायिक डाटा ग्रिड के आंकड़ों का हवाला देते हुए बताया कि करीब पैंतालीस लाख मुकदमे तो देश के उच्च न्यायालयों में लंबित हैं और सर्वोच्च अदालत में लंबित मामलों का आंकड़ा साठ हजार के करीब है। ये आंकड़े बता रहे हैं कि हमारी न्यायिक व्यवस्था संसाधनों का किस कदर अभाव झेल रही है। ऐसे में न्याय की उम्मीद किससे और कैसे की जाए?

ऐसा नहीं है कि देश की न्यायिक व्यवस्था की इस लाइलाज बीमारी के बारे में सरकारें अनभिज्ञ हों। यह भी नहीं कि समस्या कोई पांच-दस साल में बढ़ी हो। अदालतों में लंबित मुकदमों की तादाद बढ़ने का बड़ा कारण जजों की कमी है और समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने इस बारे में सरकार का ध्यान खींचा है। लेकिन दुख की बात यह है कि किसी भी सरकार ने इसे कभी गंभीरता से लिया ही नहीं। निचली अदालतों में जजों की भर्ती का काम राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है और यह काम संबंधित राज्य सरकारें न्यायिक सेवा परीक्षा के माध्यम से करती हैं। लेकिन समस्या यह है कि जिस रफ्तार से अदालतों में मुकदमे आ रहे हैं, उसकी तुलना में जजों की नियुक्ति नहीं हो रही। ऐसे में न्यायिक कामकाज बाधित होना स्वाभाविक है। राज्य सरकारों का अपना रोना है। सरकारी नौकरियों में पदों की संख्या बढ़ाने की एक सीमा है, सरकारें अपने आर्थिक बोझ तले दबी हैं। ऐसे में जब तक राज्यों की न्यायिक सेवा में बड़े पैमाने पर भर्तियां नहीं होंगी तो मुकदमों को तय सीमा के भीतर निपटाना किसी के लिए संभव नहीं है।

कानून मंत्री ने सभी उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों से दस साल या इससे ज्यादा पुराने मामलों को जल्द निपटाने का आग्रह किया है। पर सवाल तो वहीं का वहीं है कि निपटाया कैसे जाए! मामले तत्काल निपटाना आसान इसलिए भी नहीं होता कि हमारी न्यायिक प्रक्रिया काफी जटिल है। जमानत जैसी प्रक्रिया ही विचाराधीन कैदियों के पसीने छुड़ा देती है। मुकदमों की सुनवाई में सालों गुजर जाते हैं, खासतौर से दीवानी मामलों में बीस-तीस साल कोई ज्यादा समय नहीं माना जाता। मुकदमों की सुनवाई में पुलिस और जांच एजेंसियों की बड़ी भूमिका होती है। छोटे-मोटे अपराधों से लेकर बड़े और गंभीर अपराध के मामलों में जांच तो पुलिस ही करती है। देश का पुलिस तंत्र खुद संसाधनों की मार झेल रहा है। फिर पुलिस, जांच एजेंसियों और अदालतों के बीच तालमेल की कमी भी बड़ा मुद्दा है। समाज में अपराधों की बदलती प्रकृति भी पुलिस और न्यायपालिका के बड़ी चुनौती बनी है। लंबित मुकदमों का बोझ कम करने का रास्ता तो न्यायपालिका और सरकार को मिल कर ही निकालना होगा, वरना न्याय आमजन की पहुंच से दूर होता चला जाएगा।

इलाज की कीमत

किसी भी देश में विकास के असली पैमाने इससे आंके जाने चाहिए कि वहां सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली और शिक्षा की व्यवस्था कैसी है और वह कितने लोगों की पहुंच में है। लेकिन हमारे देश में चिकित्सा और पढ़ाई-लिखाई की समूची व्यवस्था जैसे-जैसे सरकारी तंत्र से फिसल कर निजी हाथों में जा रही है, वैसे-वैसे एक बड़ी आबादी उसके दायरे से बाहर होती जा रही है। विडंबना यह है कि किसी बीमारी के इलाज के लिए सरकारी अस्पतालों के मुकाबले निजी अस्पतालों में कई गुना ज्यादा रकम चुकानी पड़ती है। इसके बावजूद लोगों के सामने विकल्प सिमटते जा रहे हैं। या तो वे इलाज के नाम पर कई गुना ज्यादा पैसे चुकाने पर मजबूर हैं या फिर बेहतर चिकित्सा से वंचित रह जाते हैं। हालांकि अनेक अध्ययनों में इलाज के महंगे होने के तथ्य सामने आते रहे हैं, लेकिन अब खुद राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय यानी एनएसओ की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट में यह बताया गया है कि देश के निजी क्षेत्र के अस्पतालों में लोगों को इलाज कराने के लिए सरकारी अस्पतालों की तुलना में सात गुना ज्यादा अधिक धन खर्च करना पड़ता है।

अगर खुद सरकार के किसी महकमे की रिपोर्ट में यह स्वीकार किया जा रहा है तो यह समझना मुश्किल नहीं है कि इलाज में खर्च का इतना बड़ा फर्क सरकार की नजर में है, लेकिन इसे संतुलित करना करना सरकार को जरूरी नहीं लगता। गौरतलब है कि गर्भवती महिला के प्रसव पर एक सरकारी अस्पताल में कुल खर्च जहां ढाई हजार रुपए से भी कम आता है, वहीं किसी निजी अस्पताल या क्लीनिक में इसी मद में करीब इक्कीस हजार रुपए खर्च करने पड़ते हैं। ऐसी खबरें आम रही हैं कि अच्छी चिकित्सा के नाम पर निजी अस्पतालों में किस तरह मनमाने तरीके से पैसे वसूले जाते हैं और कई बार जरूरत नहीं होने पर भी इलाज को जटिल बना कर पेश किया जाता है। अगर प्रसव को उदाहरण मानें तो सरकारी अस्पतालों में जहां महज सत्रह फीसद मामलों में ऑपरेशन किया गया, वहीं निजी अस्पतालों में यह आंकड़ा पचपन फीसद है। इसके अलावा, सरकारी अस्पतालों में ऐसे ऑपरेशन या तो मुफ्त किए जाते हैं या फिर किसी परिवार को बहुत कम खर्च करना पड़ता है। दूसरी ओर, निजी अस्पतालों में आने वाले खर्च के बारे में शायद अलग से बताने की जरूरत नहीं है।

दरअसल, समस्या यह है कि पिछले करीब डेढ़-दो दशक के दौरान दूसरे कई क्षेत्रों की तरह स्वास्थ्य विभाग और चिकित्सा प्रणाली में सरकारी ढांचा लगातार कमजोर हुआ है और इसके बरक्स इतनी ही तेजी से इस मामले में निजी क्षेत्र का विस्तार हुआ है। देश में सार्वजनिक चिकित्सा प्रणाली में आज भी डॉक्टरों की भारी कमी है। दूरदराज और ग्रामीण इलाकों की तो दूर, कई शहरों तक के सरकारी अस्पतालों में व्यवस्था और चिकित्सा सुविधा की गुणवत्ता ऐसी नहीं है कि लोग बिना किसी हिचक के सबसे पहले वहीं जाएं। बहुत सारे गांव ऐसे हैं, जहां सरकारी डॉक्टरों की नियुक्ति तो हुई है, लेकिन वे वहां ड्यूटी करने के बजाय शहरों में अपना निजी क्लीनिक चलाने में विश्वास करते हैं। बदहाल व्यवस्था और प्रबंधन ने सरकारी अस्पतालों में बेहतर इलाज की विश्वसनीयता को कमजोर किया है। ऐसे में निजी क्षेत्र के अस्पताल अच्छी चिकित्सा का दावा करते हैं और कई बार लोगों के सामने इसके अलावा कोई विकल्प नहीं होता। कायदे से सरकार को सार्वजनिक स्वास्थ्य का समूचा ढांचा इतना मजबूत करना चाहिए कि लोगों को निजी अस्पतालों का रुख न करना पड़े। अच्छी और गुणवत्ता से लैस चिकित्सा व्यवस्था सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है, जिस तक समाज के सभी तबकों की पहुंच हो और उसके लिए नाहक ही लोगों को बेलगाम खर्च न करना पड़े।

कल्पमेधा

जो कुछ नहीं करता, केवल वही आलसी नहीं है। आलसी वह भी है जो अपने काम से भी अच्छा कर सकता है, पर करता नहीं।

-सुकरात

निगरानी के बढ़ते खतरे

ज्योति सिडाना

जब तक तकनीक का प्रयोग मनुष्य के कल्याण के लिए किया जाए, तब तक तो वह एक वरदान साबित होती है, लेकिन जब उसका उपयोग मनुष्य के खिलाफ किया जाने लगता है तो समाज विनाश के कगार पर आ जाता है, जैसा कि हम वर्तमान समाज में होता देख भी रहे हैं। परिणामस्वरूप परिवार, नातेदारी, समाज, राज्य और औपचारिक-अनौपचारिक संस्थाएं गंभीर चुनौतियों का सामना करती नजर आ रही हैं।

कंप्यूटर और संचार प्रौद्योगिकी ने 'सूचना समाज' की उत्पत्ति को संभव बनाया और इसने जीवन के प्रत्येक पक्ष को नए स्वरूप प्रदान किए। राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज, संस्कृति, शिक्षा और मनोरंजन सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारंभ में कंप्यूटर और संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी का व्यक्तिगत डाटा रोजगार, व्यावसायिक, प्रशासनिक एजेंसियों द्वारा या पुलिस एवं सुरक्षा एजेंसियों द्वारा एकत्र किया जाता था। दूसरे शब्दों में कहें तो बड़े निगमों और सरकारी संस्थानों से संबद्ध कंप्यूटर डाटाबेस में हमारी निजी जानकारी प्रतिदिन एकत्र और परिष्कृत होती रहती है। इसे ही निगरानीमूलक समाज की संज्ञा दी जाती है। धीरे-धीरे इस तकनीक का प्रयोग परिवार के अंदर भी होने लगा। सामाजिक संबंधों में अविश्वास की बढ़ती प्रवृत्ति ने परिवार के प्रत्येक सदस्य को शक के दायरे में ला दिया है, इसलिए हर कोई एक-दूसरे पर निगरानी रखने लगा है। मोबाइल फोन, सोशल साइट, सोशल मीडिया, कलाई घड़ी इत्यादि आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक गेजेट और डिवाइस मनुष्य के हर पल की खबर को कैद कर लेने में सक्षम हैं और उसे संग्रहीत करते जाते हैं, जिसका कोई भी कभी भी दुरुपयोग कर सकता है। इस निगरानी मूलक समाज ने अनेक नए प्रकार के खतरों और भय को उत्पन्न किया है।

सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए तीव्र विकास के बाद से हर जगह यानी दुकान, ऑफिस, मॉल, होटल, रेस्तरां, लिफ्ट, पार्किंग एरिया, बहुमंजिला इमारतों में यह लिखा देखा जा सकता है कि 'आप कैमरे की निगरानी में हैं'। आखिर ऐसा क्या हुआ जो हमारे जीवन के हर पक्ष को सार्वजनिक करने की होड़ जारी है। हमारे हाथ में रहने वाला मोबाइल फोन जिस पर बातचीत, संदेशों, तस्वीरों और दस्तावेजों का आदान-प्रदान होता है, हम अपनी निजी जिंदगी से जुड़ी बातें साझा करते हैं, वह किसी और के नियंत्रण में है। इस तरह निजता खतरे में पड़ गई है। अब अचानक सब कुछ सार्वजनिक होने लगा है। आखिर क्यों? समाज को नियंत्रित करने का यह कौन सा तरीका है जो 'निजता के अधिकार' (राइट टू प्राइवेसी) का उल्लंघन करने से भी नहीं चूकता? इस नई तकनीक ने निजी और सार्वजनिक के बीच के अंतर को मिटा कर रख दिया है।

यह एक तथ्य है कि अब से पहले इतिहास में किसी भी समाज में कभी भी आमजन के रोजमर्रा के सामाजिक जीवन की इस तरह से निगरानी नहीं की गई। इससे समाज में एक नए किस्म के खतरे और भय-मनोविज्ञान को उत्पन्न होते देखा जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान, शोध कार्य करते समय लोगों को यह आश्वासन दिया जाता है कि उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को गोपनीय रखा जाएगा, पर अब इस नई प्रौद्योगिकी के आने के बाद भी क्या इस तरह का कोई भरोसा दिया जा सकता है, ताकि उत्तरदाता / नागरिक निडर होकर सही और पक्षपात रहित जानकारी दे सकें। इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि आने वाले कुछ वर्षों में हर व्यक्ति सोचने से भी डरने लगे कि ऐसा न हो कि उसके सोचने पर भी निगरानी शुरू हो जाए। देखा जाए तो संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के समक्ष वर्तमान सूचना समाज ने अनेक जोखिम उत्पन्न कर दिए हैं। उदाहरण के लिए वाक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निजता का अधिकार आदि हाशिये पर चले गए हैं।

यहां यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि क्या हम प्रौद्योगिकी के नियंत्रण में हैं या प्रौद्योगिकी हमारे नियंत्रण में? प्रौद्योगिकी एक अच्छी सेवक तो हो सकती है, पर उसका मालिक वाला स्वरूप समाज के लिए बड़ा खतरा है। प्रौद्योगिकी उस तेज धार चाकू के समान है जिससे फल-सब्जी भी काटे जा सकते हैं और किसी का गला भी। परंतु यह आप पर निर्भर करता है कि आप उसका प्रयोग किसके लिए करते हैं? अगर आप किसी का गला काटते हैं तो इसमें दोष चाकू या प्रौद्योगिकी का नहीं है। जब तक तकनीक का प्रयोग मनुष्य के कल्याण के लिए किया जाए, तब तक तो वह एक वरदान साबित होती है, लेकिन जब उसका उपयोग मनुष्य के खिलाफ किया जाने लगता है तो समाज विनाश के कगार पर आ जाता है, जैसा कि हम वर्तमान समाज में होता देख भी रहे हैं। परिणामस्वरूप परिवार, नातेदारी, समाज, राज्य और औपचारिक-अनौपचारिक संस्थाएं गंभीर चुनौतियों का सामना करती नजर आ रही हैं।

हाल में वाट्सऐप से जासूसी की खबर ने सारे समाज में न केवल चिंता और गुस्सा उत्पन्न किया है, अपितु अनेक सवालों को भी जन्म दे डाला है। एनएसओ नामक इजराइली कंपनी ने वाट्सऐप जासूसी घटना का उद्देश्य आतंकवाद और अपराध से लड़ने के लिए सरकारों को साइबर मामलों में तकनीकी मदद प्रदान करना बताया था। लेकिन मानवाधिकार समूहों और विशेषज्ञों का तर्क है कि कुछ देशों की सरकारें साइबर अपराधों की मदद से अपने राजनीतिक विरोधियों की जासूसी करवाती हैं और अपने खिलाफ पनपने वाले असंतोष को कुचलने की कोशिश करती हैं। सवाल है कि आखिर हम किस तरह के समाज की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जहां उठना-बैठना, सोना-जागना, खाना-पीना और शयनकक्ष तक की गतिविधियां सब कुछ दूसरों के नियंत्रण में जा चुकी हैं।

विचारणीय विषय यह है कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? किसी की निजी जिंदगी को सार्वजनिक कर के कोई क्या हासिल करना चाहता है? हां, इतना अवश्य हुआ है कि इन सबके कारण साइबर अपराध की घटनाएं तेजी से बढ़ रही हैं जिन पर काबू पाना कठिन होता जा रहा है। सामान्यतः कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि इस प्रौद्योगिकी का उपयोग समाज से अपराध को समाप्त करने के लिए किया किया जा रहा है, पर राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़े बताते हैं कि 2014 में साइबर अपराध के 9622, 2015 में 11592 और 2016 में 12317 मामले सामने आए थे। जाहिर है, साइबर अपराधों का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा है। साइबर अपराधों में भारत दुनिया में तीसरे स्थान पर है।

यह चिंता का विषय है कि तकनीकी विकास का यह दौर हमारे समाज को कहां ले जाएगा? क्या प्रौद्योगिकी के बाजार में हम एक वस्तु या उत्पाद बन कर रह गए हैं जहां हमारी मर्जी के बिना कोई भी इन सूचनाओं को खरीद और बेच सकता है। अगर कोई व्यक्ति अपने निजी दायरे में किसी से कोई बात साझा करता है या कोई संपर्क-संवाद करता है तो वह भी सार्वजनिक हो जा रहा है, जिसे कोई भी अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर सकता है, ब्लैकमेल कर सकता है या संभावित दुश्मन बन कर उभर सकता है। परिणामस्वरूप इसे 'विश्वास के अंत का युग' कहा जा सकता है, जिसमें हर कोई दूसरों पर अविश्वास करने के कारण निगरानी मूलक तकनीक का इस्तेमाल करने को बाध्य हुआ है। समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखें तो सामाजिक संबंधों का निर्माण पारस्परिक विश्वास पर टिका होता है, लेकिन जब विश्वास का ही संकट खड़ा हो जाए तो मानवीय रिश्ते रह कहां जाएंगे! इसी का परिणाम है कि आज समाज में भय, हिंसा, अविश्वास, धोखा तेजी से पैर पसारते जा रहे हैं।

बिना अनुमति किसी भी नागरिक की निजी और सार्वजनिक सूचनाएं एकत्र करना या उन पर निगरानी रखना एक गंभीर अपराध है। इसे किसी भी दृष्टि से न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। हर व्यक्ति की अपनी एक आत्म-प्रतिष्ठा होती है जिसको किसी के साथ साझा करने या न करने का अधिकार भी केवल उसी का होता है। अतः बिना उसकी अनुमति के उसकी निजी जानकारी को सार्वजनिक करना उसकी निजता का हनन करना है जो संविधान द्वारा दिए गए अधिकार का भी उल्लंघन है।

अनोखी कड़वाहट

सुधीर विद्यार्थी

दुनिया मेरे आगे

घर के बाहर कच्ची जमीन पर बेटी ने गिलोय की बालिश्त भर की जो टहनी रोपी, उसमें कब अंखुए फूटे, यह हमें पता नहीं चला। कुछ ही दिनों में गिलोय के इस पौधे ने लता का रूप धर कर ऊपर लगी रेलिंग और दूसरे पौधों को अपनी लपेट में लेने की कवायद शुरू कर दी। पान जैसे खूबसूरत पत्तों वाली यह सर्पीली बेल अपने सौंदर्य से हर रोज हमारी आंखों को मोहने लगी। सवेरे उठते ही हम सबसे पहले गिलोय को देखने पहुंचते जो तेजी से फैलती चली जा रही थी। दिन में कई बार उस विस्तारित होती गिलोय को देखना हमारी दिनचर्या में जुड़ गया था। हर रोज टहनियों के सिरे पर नए कोमल पत्ते झिलमिलाने लगते और नीचे के पत्ते अपने आकार में बड़े और ज्यादा गहरी हरीतिमा लिए आंखों को सुकून देते।

हमें यह देख कर आश्चर्य होता कि गिलोय की उस आगे बढ़ती लता को यह कैसे आभास होता है कि उसे अब सहारे की जरूरत है और वह किसी डोर, दूसरे पौधे की टहनी या सामने लटके किसी तार की ओर लपक कर अपना हाथ बढ़ाने लगती! आगे चल कर अगर उसे अपना रास्ता अवरुद्ध दिखाई देता तो वह वापस उसी सहारे पर लौट आती, जिसे उसने अपने कोमल पाश में पहले से बांध रखा है। हमने एक दिन गिलोय की बढ़ती टहनी के सामने थोड़ी दूरी पर बांस की एक खपच्ची खड़ी कर दी, यह देखने के लिए कि क्या इतनी दूरी तक गिलोय की कोई बेल पहुंच कर इसे पकड़ पाएगी! लेकिन दो दिन बाद ही गिलोय ने जैसे लपक कर बांस के नुकीले सिरे को कस कर थाम ही नहीं लिया, बल्कि उस पर उसने अपनी देह के कई सर्पीले फंदे भी कस दिए। हालांकि प्रकृति और उसके जीवन की ये गतिविधियां स्वाभाविक हैं और मैं इन सबसे बिल्कुल अनजान नहीं रहा हूं। लेकिन यह दृश्य मेरे लिए हैरत में डालने वाला था। मैं सोचने लगा कि क्या गिलोय के सचमुच की आंखें होती हैं! उसे इतनी दूर तक कैसे दिखाई पड़ जाता है कि वहां कुछ है! खैर, कुछ ही दिनों में गिलोय के पौधे ने सचमुच ही 'अंतरिक्ष' की उड़ान भर दी। हमारी छतों के छज्जे तक पहुंच कर उसने अपनी ध्वजा फहरा दी। ऐसा लग रहा था कि पता नहीं गिलोय की सर्पीली बेल आसमान में कहां तक का अपना रास्ता तय करेगी!

यह हमारा सुपरिचित पौधा है, जो बेहतरीन आयुर्वेदिक औषधीय प्राकृतिक उपहार है। इसका कई तरह की बीमारियों में इस्तेमाल होता है। आयुर्वेद में इसे अमृता, गुडुची (गुर्च), चक्रांगी, छिन्नरूहा आदि नामों से जाना जाता है। पुराने ज्वर जैसी कई असाध्य बीमारियों में इसका सेवन बहुत लाभकारी होता है। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है। इसे उबाल कर पीना बच्चों के लिए कठिन होता है। गिलोय जिस पेड़ के ऊपर चढ़ जाती है, उसके गुणों को भी अपने में समा लेती है। शायद इसीलिए नीम के पेड़ पर चढ़ी हुई गिलोय ज्यादा लाभदायक मानी जाती है। नीम की संगत से उसकी कड़वाहट में और वृद्धि हो जाती है। हमारे यहां कहावत भी है कि 'गिलोय और नीम चढ़ी'। अब तो बाजार में गिलोय के जूस और चूर्ण भी चमकीली पैकिंग में उपलब्ध हो चुके हैं। आयुर्वेद में इस विषय पर पूरा अलग विज्ञान है जो बेहद पठनीय है।

यह सचमुच चमत्कारी पौधा है, पर मैं यहां सिर्फ उसके रूप-रंग, आकार-प्रकार और प्रकृति की बात कर रहा हूं। इसके बढ़ने की गति और सौंदर्य देख कर कौन होगा जो मुग्ध नहीं होगा। पत्ते का आकार एकदम 'दिल' की तरह। कुछ-कुछ पान से मिलता-जुलता। मैंने अपनी इस गिलोय-लता की कई तस्वीरें उतार कर मित्रों को भेजीं, पर उनमें से कोई उसे पहचान नहीं पाया। एक बोले कि यह मगही या दिसावरी पान है। हम प्रकृति से इतने दूर हो गए हैं कि पेड़-पौधों की शिनाख्त हमारे लिए नितांत मुश्किल कवायद हो गई है। हम हर रोज अपनी रसोई में जिन चीजों का इस्तेमाल करते हैं, उनके पौधों को न पहचान पाना हमारे लिए अफसोस की बात है।

उस दिन तेज बरसात में गिलोय भीग रही थी। पत्ते कुछ ज्यादा ही धुले और चमकीले लगने लगे थे। हवा में लहराती उसकी टहनियों ने उसके लचीलेपन को और अधिक लोच प्रदान कर दी थी। मैं बेल को संभालने में लगा था कि देखा कि उसके कुछ पुराने होते पत्ते पीले जर्द हो गए हैं। मैंने उन पत्तों को तोड़ कर अलग करना चाहा, पर उनमें अभी नमी बरकरार थी। बूढ़े होते वे पत्ते हरेपन के बीच एक अलग ही सौंदर्य की सृष्टि कर रहे थे। फिर हमने नन्हे कोमल पत्तों की तरफ गौर से देखा। अभी उन्हें जीवन की दीर्घ यात्रा तय करनी है पुरातन होने के लिए। गिलोय की टहनियां ज्यों-ज्यों मोटी और कड़ी होती जाती हैं, उनमें कड़वापन बढ़ता है, जो अत्यंत लाभकारी है। प्रकृति ने हमें जो कुछ अच्छा दिया है, उसमें गिलोय की अनोखी कड़वाहट भी है। यह सचमुच अमृता है।

इंटरनेट की लत

एक तरफ जहां देश में लगातार बेरोजगारी बढ़ती जा रही है तो वहीं दूसरी तरफ हाल ही में आई कुछ रपटों में दावा किया गया है कि 'इंटरनेट एडिक्शन' यानी इंटरनेट की लत का शिकार सबसे ज्यादा हमारे देश के युवा हैं। ये वही युवा हैं जिनके दम पर भारत न सिर्फ आगे बढ़ने का सपना संजोए है लेकिन ये तो सोशल मीडिया पर बासी चुटकुले और हास्य विडियो 'शेयर' करके लोगों का मनोरंजन करने में व्यस्त हैं। सोशल मीडिया पर उनके पास दुनियाभर से चीजें आ रही हैं लेकिन उनके परिवार में क्या चल रहा है उन्हें उसकी खबर तक नहीं।

आज तेजी से बढ़ती तकनीक ने हमें बहुत कुछ दिया तो जरूर है, पर साथ ही बहुत कुछ हमसे छीना भी है। सोशल मीडिया पर बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं जिन्हें हम जानते-पहचानते तक नहीं पर फिर भी उन पर लगातार भरोसा किए जाते हैं। उनसे अपनी हर जानकारी साझा करने में लगे रहते हैं जो हमारे लिए कई बार नुकसानदेह भी साबित होती है। इसके चलते हम साइबर ठगी के शिकार हो जाते हैं। सोशल मीडिया ने आज हमें संवेदनहीन बना दिया है। बच्चों से लेकर बड़ों तक सब अपनी छोटी-सी दुनिया में ही सिमटते जा रहे हैं। हम अपने दुख-सुख के पलों को परिवार से ज्यादा सोशल मीडिया पर साझा करने को बेताब दिखाई देते हैं।

इंटरनेट की लत का यह संकट भारत सहित पूरी दुनिया पर तेजी से गहराता जा रहा है। अब तो हालात ऐसे हो गए हैं कि युवाओं में बेरोजगारी सहित देश की वास्तविक समस्याओं के बारे में सोचने-समझने तक की क्षमता खत्म होती जा रही है। युवाओं में इंटरनेट की लत की एक बड़ी वजह बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध इंटरनेट डेटा भी है। हालांकि अब टेलीकॉम कंपनियां घाटे को देखते हुए अपने शुल्कों में लगातार बढ़ोतरी कर रही हैं पर फिर भी कंपनियों द्वारा मिलने वाला असीमित डाटा हमें इंटरनेट की लत का शिकार बना रहा है। इंटरनेट जानकारी का सबसे अच्छा स्रोत है, बहुत से लोग इस मंच पर आकर अपने हुनर को दुनिया के सामने लाने का काम कर रहे हैं। दूर-दराज के युवा तो आज इंटरनेट के जरिए पढ़ाई भी करने लगे हैं। पर ज्यादातर लोग इस आभासी दुनिया में आकर कब दिशा से भटक जाते हैं उन्हें पता ही नहीं चलता। आज नशीले पदार्थों की जगह लोग इंटरनेट के नशे का शिकार हो रहे हैं। कई देशों में तो इंटरनेट के इस नशे से छुटकारा दिलाने के नाम पर बकायदा क्लीनिक भी खोल दिए गए हैं जिनकी महंगी फीस चुका कर लोग इस नशे से मुक्ति पा रहे हैं। यदि हम इस समस्या को लेकर आज गंभीर नहीं हुए तो हो सकता है कि हमारी युवा शक्ति जाने-अनजाने विकास की बजाय विनाश के रास्ते पर अग्रसर हो चले। फोन से दुनिया को मुट्ठी में कर लेने का दम वाले युवा कब फोन की मुट्ठी में सिमट कर रह जाएंगे उन्हें इस बात का अहसास तक नहीं होगा।

● *रोहित यादव, महर्षि दयानंद विवि, रोहतक*

रोजगार का सवाल

भारत में बेरोजगारी एक ज्वलंत समस्या है। बेरोजगारी से ही देश में अराजकता बढ़ी है। इसका गरीबी से भी घनिष्ठ संबंध है। प्रचलित मजदूरी की दर पर काम करने के इच्छुक लोगों को भी रोजगार नहीं मिल पा रहा है। बेकारी और अर्द्ध-बेकारी किसी भी देश की समृद्धि के लिए बाधक हैं। दोषपूर्ण आर्थिक नियोजन, कुटीर उद्योगों की खराब हालत और पेशेवर शिक्षा की कमी से बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है। आंकड़े बताते हैं कि भारत दुनिया का सबसे अधिक बेरोजगारों वाला देश है। यहां निजी क्षेत्र की अपेक्षा सरकारी नौकरी हर किसी की पसंद है। यही कारण है कि राज्य या केंद्र सरकार की भर्तियों में लाखों उच्च शिक्षित युवाओं की भीड़ बढ़ती जा रही है। आखिर इस समस्या के ठोस समाधान की दिशा में हमारी सरकारें कब गंभीर होंगी?

● *नीतीश कुमार पाठक, आश्रम, नई दिल्ली*

गण बनाम तंत्र

भारतीय संविधान सभा ने 26 नवंबर 1949 को संविधान को स्वीकृत किया था। इसी उपलक्ष्य में 26 नवंबर को भारतीय संविधान दिवस मनाया जाता है। उन महान स्वतंत्रता सेनानियों को शत-शत नमन जिनकी बदौलत आज हम एक गणतंत्र में आजादी से रह रहे हैं। महात्मा गांधी ने गणतंत्र के लिए विचार रखा था कि 'मैं ऐसे संविधान के लिए प्रयत्न करूंगा जिसमें छोटे से छोटे व्यक्ति को भी अहसास हो कि यह देश उसका है, इसके निर्माण में उसका योगदान है, उसकी आवाज का यहां महत्त्व है...।'

अफसोस की बात है कि गांधीजी के इस आदर्श का अनुसरण करना आजाद देश के सत्ताधारी, स्वार्थी राजनेता और नौकरशाह भूल गए, तभी तो आज गण और तंत्र के बीच फासला बढ़ता जा रहा है। आज गण के तंत्र में आमजन को जरा भी अहसास नहीं होता कि यह उनका तंत्र है या उनकी सेवा के लिए संविधान में गण के लिए तंत्र का प्रावधान किया गया था। गण पर तंत्र का हावी होना यह भी दर्शाता है कि देश की राजनीति और नौकरशाही में स्वार्थी लोगों की संख्या बढ़ रही है और देशभक्तों की कमी हो रही है। भारत के गण के तंत्र में आए खोट का आधार है राजनीति का खोट। इस खोट को दूर करने में गण सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है अपने वोट का प्रयोग राजनीतिक तौर पर जागरूक होकर करके। गणतंत्र की आन-बान और शान के लिए देश के हरेक नागरिक को, चाहे वह किसी भी धर्म या संप्रदाय का क्यों न हो, अपने अंदर देशभक्ति की भावना जगानी चाहिए; संविधान में मिले अधिकारों के लिए ही नहीं, बल्कि कर्तव्यों के निर्वाह में भी गंभीरता दिखानी चाहिए।

● *राजेश कुमार चौहान, जालंधर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

बदहाल उच्च शिक्षा

किसी भी देश की उच्च शिक्षा की तस्वीर वहां की सरकार की शिक्षा क्षेत्र में प्राथमिकता को दर्शाती है। पिछले कई सालों से लगातार जब भी दुनिया में बेहतर गुणवत्ता वाले विश्वविद्यालयों की सूची सामने आती है तो सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि पहले तो भारत शीर्ष 200 में भी जगह बनाने में कामयाब हो जाता था लेकिन हाल ही में जारी टाइम्स हायर एजुकेशन रिपोर्ट के अनुसार शीर्ष 300 में भारत का एक भी विश्वविद्यालय शामिल नहीं है। सवाल है कि सरकारों की ओर से लगातार विकास के दावों के बावजूद आखिर इस मामले में तस्वीर क्यों बिगड़ती जा रही है? सुधार के बजाय हालात बदतर क्यों हैं? उच्च शिक्षा के मौजूदा हालात के रहते सरकार अपने 'स्टडी इन इंडिया' के सपने को कैसे साकार कर पाएगी?

सरकार से गुजारिश है कि इस मामले में सुधार के लिए ठोस पहलकदमी- जैसे शिक्षकों के खाली पदों पर भर्ती, गुणवत्ता सुधार के ठोस उपाय करे ताकि भविष्य के लिए कोई उम्मीद जग सके।

● *कपिल एम वाड़ियार, पाली, राजस्थान*

www.readwhere.com